National Research Journal of Business Economics
Volume No: 9, Issue No: 2, Year: 2022 (July-December)
PP: 41-50
ISSN No: 2349-2015 (Print)
Peer Reviewed & Refereed Journal
National Research Journal

गाँव की कहानियां और कहानियों में गढ़ते गाँव : कथाकार शिवमूर्ति

पुष्पा कुमारी

शोधार्थी, हिन्दी विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, कामेश्वरनगर, दरभंगा

सारांश–

शिवमूर्ति की कई कहानियां अपनी पठनीयता के बल पर लंबे समय तक स्मृति में अपना स्थान बनाए रखती हैं। गांवों को लेकर ऐसी पठनीय कथाएं हिंदी साहित्य जगत में सचमुच बेहद दुर्लभ हैं। मिसाल के लिए उनके कथासंग्रह 'केसर-कस्तूरी' में संकलित कहानियां अपने जबर्दस्त कथाविन्यास और आवेगमयी अभिव्यक्ति के लिए जानी जाती हैं। इसमें उनकी छह महत्वपूर्ण कहानियां संकलित हैं। ये कहानियां हैं-कसाईबाड़ा, अकालदंड, सिरी उपमा जोग, भरतनाट्यम, तिरिया चरित्तर और केसर कस्तूरी। सारी की सारी कहानियों में ग्रामीण परिवेश प्रधान है या ग्रामीण परिवेश से शहर में आकर बसे लोग जिनका गांव से संबंध सुखद या दुःखद ढंग से अभी बरकरार है। शिवमूर्ति का साहित्य स्वातंत्र्योत्तर भारत के वर्ण-जाति के पंक में आकंठ धसे गांवों की हकीकत से परिचित कराने वाला साहित्य है। उनके गांव रहस्यमय कल्पनाओं से आवृत भी नहीं हैं जहां इंसान से ज्यादा ध्यान चिड़िया की टींटी-टूटू पर जाए। उनकी कहानियों में चित्रित गांव में हर तरफ आतंक है और यह आतंक सीधी गोलाबारी या हिंसा से नहीं बल्कि बहुत महीन स्तरों पर सरकार-राजनीति और सामंती संस्कृति के बीच से पैदा षड्यंत्रों के सहारे फैलाया गया है।

हिंदी साहित्य में जनवादी मूल्यों के कारण गांव को लेकर सच्ची-झूठी चिंताएं भी जाहिर की जाती हैं। इन चिंताओं के कारण ही प्रायः बहसों में कहा जाता है कि खास काट की आधुनिकता ने हिंदी साहित्य को शहर केंद्रित और मध्यमवर्ग केंद्रित बना दिया है। पूंजीवादी अर्थशास्त्र से आधुनिकता को अलग नहीं किया जा सका और इसीलिए पूंजीवादी नियमों से संचालित खास तरह की आधुनिकता को लोकवादिता और जनसंस्कृति पर प्रहार करने वाले शस्त्र के रूप में भी देखा गया। पर हिंदी में ग्रामीण जीवन पर कथाएं लिखने की परंपरा भी उसी आधुनिकता से संभव हुई है जो आधुनिकता गांवों के जीवन व सौंदर्यबोध के विरुद्ध मानी जाती है। अगर हम वर्ष 1900 ई. को आधुनिक हिंदी कहानी के उदय का साल मान लें तो आसानी से देखा जा सकता है कि

ISSN No: 2349-2015 (Print)
Peer Reviewed & Refereed Journal
National Research Journal

उसके बाद हीं 'प्लेग की चुड़ैल' और 'कटोरा भर मिट्टी' जैसी ग्रामीण परिवेश से संबद्ध कथाएं लिखी जाने लगीं। शिवमूर्ति की कहानी वर्तमान समाज की खाई को भरने का प्रयास कर रही है।

मुख्य बिंदुः-

स्मृति, दुर्लभ, कथाविन्यास, आवेगमयी, अभिव्यक्ति, कसाईबाड़ा, अकालदंड, सीरी उपमा जोग, भरतनाट्यम, स्वतंत्रोत्तर, मध्यवर्ग, पूंजीवादी, जनसंस्कृति, सौंदर्यबोध, सहानुभूति, उत्पीड़नकारी, भ्रष्टाचार, अतिप्रसिद्ध, जिजीविषा, मैत्रीपूर्ण, सामंतवाद, लोकतांत्रिक, यथार्थवाद, अशिक्षा, आत्महत्या, अध्ययन का उद्देश्य।

आधुनिकता के मानवीय समानता और जीवन के समान अधिकार जैसे ढेरों सकारात्मक मूल्य ग्रामीण यथार्थ के साथ सहानुभूति रखने और उसके भिन्न चित्रण का कार्य करते नजर आते हैं। यानी आधुनिकता ने एक नए ढंग से साहित्य को परिभाषित और निर्मित किया, उसके दायरों का विस्तार किया। प्रेमचंद स्वयं भी आधुनिक मूल्यों और संस्कृति के साहित्यकार दिखते हैं जो गांव के जीवन-समाज की कथाएं लिखते हैं। कह सकते हैं कि- "आधुनिकता से जब आप जिरह करने चलें तो विचित्र दुविधाग्रस्त निष्कर्षों पर पहुंचते हैं। एक ओर इसके मुक्तिकारी प्रभाव दिखते हैं तो दूसरी ओर इसके कई उत्पीड़नकारी पक्ष सामने आते हैं। आधुनिकता पर लगाए गए कुछ आरोप सही भी हैं क्योंकि भारत में आधुनिकता के कई संस्करण प्रचलित रहे हैं और आधुनिकता की छद्म छवियों का प्रयोग निर्माणाधीन लोकतंत्र को क्षति पहुंचाने के लिए भी किया गया है। प्रतिक्रियावादियों और कारपोरेट पूंजीपतियों के हाथ में पड़कर आधुनिकता अधिक बदनाम हुई, जबकि प्रगतिशील राजनीति और मूल्यों से ही आधुनिकता का सच्चा दोस्ताना कायम हो सकता था। प्रगतिशील मानस और उसके सामाजिक मूल्यों ने आधुनिकता का सकारात्मक प्रयोग भी किया है।"[1]

प्रेमचंद के बाद आगे चलकर रेणु, मार्कंडेय, शेखर जोशी और शिवमूर्ति आदि ने कहानियों के भीतर गांव की बहुविध छवियां बचाकर रखों और हिंदी साहित्य से गांव के निष्कासन को सफलतापूर्वक बाधित किया। शिवमूर्ति का कथा साहित्य तो काफी दृढ़ता से ग्रामीण जीवन और आधुनिक जीवन-मूल्यों के पक्ष में खड़ा नजर आता है। उन्होंने शहर में आधुनिकता के संकटों को देखने के स्थान पर गांवों में आधुनिकता के अभाव को देखा। इसी तरह उन्होंने गांवों को केवल खेतिहर किसान का पर्याय समझने के बजाय ग्रामीण संरचना में शामिल कई अन्य पक्षों जैसे स्त्री-

ISSN No: 2349-2015 (Print)
Peer Reviewed & Refereed Journal
National Research Journal

जीवन, जातिवाद, सरकारी भ्रष्टाचार और आपसी ईर्ष्या आदि को कथानकों का आधार बनाया। उन्होंने हितों के स्तर पर किसान-जमींदारों के ध्रुवीकरण को ही ग्रामीण जीवन का एकमात्र सत्य मानने के बजाय खुद किसानों-"दलितों के आंतरिक पारिवारिक जीवन पर नजर रखी और सबसे अधिक तो स्त्रियों के उत्पीड़ित जीवन को कई कोण से प्रस्तुत करते हैं। शिवमूर्ति की एक अतिप्रसिद्ध कहानी 'तिरिया चरित्तर' है। जिसमें गांव के जीवन का यथार्थ एक साहसी पर हर तरफ से लाचार स्त्री की दारुण पीड़ा के माध्यम से बयान किया गया है। लोकतंत्र की सफलता की कसौटी यह मानी जाती है लोकतंत्र देश के सबसे कमजोर वर्ग के लिए क्या कर पा रहा है। पर इसके उलट गांवों में उच्चवर्गीय समाजों की सफलता इस पर टिकी होती है कि वह कमजोर वर्ग का किस सीमा तक दमन कर पा रहा है। 'तिरिया चरित्तर' की नायिका विमली अपने पैरों पर खड़ा होना तो जानती है पर वह उसके उत्पीड़न के लिए घात लगा कर बैठे पुरुषों के चक्रव्यूह को भेदना नहीं जानती है।"[2]

पितृसत्ता की सफलता स्त्री को आत्मनिर्भर बनने से रोकने में होती है और वह इस सफलता को प्राप्त करने के लिए घर की दहलीज के बाहर की दुनिया को तरह-तरह से स्त्रियों के लिए भयावह, असुरक्षित, लांक्षित व चरित्र पर दाग पैदा करने वाली दुनिया के रुप में चित्रित करती है। स्त्री को घर के बाहर का संसार जानने का निजी अनुभव हो. इससे पहले ही उस पर दूसरों के अनुभव थोप दिए जाते हैं। यानी 'घर' और 'बाहर' की दुनिया का विभाजन पितृसत्ता की सबसे सफल रणनीतियों में से एक है और यह विभाजन स्त्री के शरीर और मन पर बलपूर्वक नियंत्रण स्थापित करने के लक्ष्यपूर्ति से जुड़ा होता है। जब इनका विवेचन होता है तो समाज की धर्म से लेकर परिवार-विवाह तक की कितनी ही संस्थाओं के बारे में रुमानी-शुद्धतावादी धारणाओं में खलबली मचने लगती है। शिवमूर्ति की अगर इस कहानी का सजग पाठ करें तो यह सामाजिक हकीकत सामने आ जाती है कि निम्नवर्गीय स्त्री की देह कमजोर आर्थिक स्थिति और पुरुषों के मध्य श्रम की विवशता के कारण अधिक असुरक्षित होती है। पूरी अध्यात्मवादी चिंतन, परंपरा, पदार्थ और चेतना के बीच द्वंद्व में चेतना को सर्वोपरि मानती है पर स्त्री-पुरुष के रिश्तों में चेतना संपन्न पुरुष हमेशा ही स्त्री को पदार्थ (यानी वस्तु) के रूप में देखता है जिसका शीघ्र उपभोग करना है। "विमली पहले तो अपने गांव में पुरुषों के बीच असुरक्षित होती है और फिर अपने ही ससुर के हाथों बलात्कार की शिकार होती है। वह द्रौपदी भी नहीं कि कोई कृष्ण उसे बचाने आ जाएं और न ही गांव के लोग उस पर लगे दुश्चरित्रता के आरोपों में उसका पक्ष सुनने को तैयार हैं।

ISSN No: 2349-2015 (Print)
Peer Reviewed & Refereed Journal
National Research Journal

पर वह केवल गूंगी-बहरी गुड़िया नहीं है जो हर जुल्म को सिर झुकाकर सह ले। वह विरोध करती है, लड़ती है और ललकारती है और इस रूप में अपने व्यक्तित्व का परिचय देती है। वह वक्त पड़ने पर हिंसक प्रतिरोध के लिए भी तैयार हो जाती है।"[3] गांव में सजा सुनाए जाने पर वह विरोध में तनकर खड़ी होती है और कहती है- "मुझे पंच का फैसला मंजूर नहीं। पंच अंधा है। पंच बहरा है। पंच में भगवान का सत नहीं है। मैं ऐसे फैसले पर थूकती हूं-आ-क्यू...! देखूं कौन माई का लाल दागता है।"[4] पर उसकी मांग गर्म कलकुल से दाग दी जाती है ताकि जिस सुहागचिन्ह के कारण स्त्री को स्वीकारा जाता है, उसी चिन्ह से उसे सर्वदा के लिए वंचित किया जा सके। कह सकते हैं आज नारीवाद स्त्रीत्व के जिन प्रतीकों जैसे सिंदूर, चूड़ी, बुर्का, गहना आदि को स्त्रियों के खिलाफ साजिश बता कर उनसे मुक्ति की बात कहता है, वह मुक्ति अगर सचमुच संभव हो जाए तो तिरिया चरित्तर की विमली को इस तरह की आपराधिक सजा देने का आनंद समाज को नहीं मिलेगा और वह फिर ऐसी सजा देगा भी नहीं।

शिवमूर्ति की कथाओं-उपन्यासों में अवध की ग्रामीण संस्कृति का बहुरूपी और गहरा अंकन मिलता है जो कहानियों से लोक के विलोपन की मुहिम को अपने बल पर स्थगित भी करता है। पर ग्रामीण जीवन केवल प्रति और ऋतुओं पर केंद्रित न होकर मुख्य रूप से ग्रामीण जनों की कठिन स्थितियों और संघर्षों के माध्यम से व्यक्त होता है। उनकी कहानियां इसलिए भी सफल दिखती हैं क्योंकि पात्रों की भीड़ नहीं खड़ी करती है और न स्थितियों और प्रसंगों के अंबार। वह पात्र को चुनते हैं, "उसकी खूबी और समस्या से पाठकों को अवगत कराते हैं और फिर उसी को केन्द्र में रखकर उसका पूरा चरित्र सामने लाते हैं। किसी समुदाय विशेष की समस्या के उभार के लिए भी वह प्रतिनिधि चरित्र गढ़ते हैं और परिस्थिति की पूरी विडंबना (आयरनी) का चित्र खींच देते हैं। उनका यह प्रतिनिधि चरित्र ही कथा के पूरे वातावरण और स्थितियों को मूर्त चेहरा प्रदान करता है। वह विपन्नों के जीवन की केवल समाजशास्त्रीय सूचनाएं नहीं रखते हैं बल्कि उनकी अभिव्यक्तियों में अनुभव भी उसमें महसूस हो जाता है। यहां तक कि गांव-देहात में स्थानीय बाबाओं और पीरों के नाम पर जो मेले लगते हैं और उनमें जिस तरह से गाते-बजाते, कीर्तन करते और सोहर-दादरा सुनते हुए गांव का पूरा समाज हिस्सा लेता है।"[5] इसका बड़ा सजीव रूप कहानियों में मिल जाता है। खास बात यह भी है कि शिवमूर्ति गांव के अशिक्षित और जाहिल समझे जाने वाले लोगों से सहानुभूति रखते हैं, जबकि शिक्षा पाकर गांव से पलायन कर गए लोगों के दोमुंहेपन और बेईमानी को व्यक्त करते हैं। उनकी कहानियों में इसकी बहुत चिंता नहीं मिलती

ISSN No: 2349-2015 (Print)
Peer Reviewed & Refereed Journal
National Research Journal

कि पाठक को कथा के बीच में चुस्त जुमले, रोचक संवाद या ज्ञानवर्धन की बातें मिलती हैं या नहीं। यही निश्चिंतता उनकी कहानी को अधिक विश्वसनीय और दिलचस्प बनाने में सहायता देती है। वरना तो ऐसे कहानीकार भी कम नहीं हैं जो कहानी को उसकी कला की कसौटी पर मांजने के स्थान पर ज्ञानकोश का ही एक रूप बनाने लगते हैं।

सूचनाओं के ऐसे जाल खड़े करते हैं कि कहानी दम तोड़ देती है। पात्र आमने-सामने बैठकर देश की स्थितियों पर गंभीर विचार करते हैं और कहानी की जगह एक अच्छा निबंध या टिप्पणियों का संग्रह तैयार हो जाता है।

गांवों पर लिखी ऐसी कहानियां भी कम नहीं हैं जो गांव की जाति-बिरादरी के आंकड़े और वहां की जिंदगी के ब्यौरों का ढेर खड़ा कर देती हैं, जबकि कहानी का उद्देश्य गाँव के स्थिर तथा गतिशील यथार्थ को प्रस्तुत करना है, जोकि आँकड़ों और ब्यौरों से संभव नहीं होता है। शिवमूर्ति ने कहानियों में गाँव को प्रधान विषय वस्तु बनाया है पर गाँव को सौंदर्य या अध्यात्म की निर्लिप्त उपासना के लिए प्रयोग नहीं किया जैसा कि कई गाँधीवादी गाँवों का इसी रूप में इस्तेमाल करना चाहते हैं। गाँवों के वर्णन में भी खासतौर पर गरीब उत्पीड़ित स्त्री को केंद्र में रखा है जिसके ऊपर हमेशा 'गीधों से देह नुचवाने' का खतरा मंडराता रहता है। यह उत्पीड़ित स्त्री जातिहीन वर्गहीन अस्मिता नहीं है जिसे केवल अबला के संबोधन तक सीमित कर दिया जाए। 'अबला जीवन हाय तुम्हारीयही कहानी....."[6] वाली पंक्ति रटने या दोहराने भर से यह समझना मुश्किल होता है कि स्त्री के शोषण का वास्तविक कारण और पृष्ठभूमि क्या है। किसी स्त्री को अबला कहने पर वस्तुतः हम केवल उसकी समस्या को चिह्नित कर रहे होते हैं, समस्या के मूल कारण पर हमारी नजर नहीं जाती है। बल्कि स्त्री को अबला कह देने से पूरी पुरुष जाति को खास तरह का संतोष मिलता होगा, उसे अपनी शक्ति का आभास मिलने पर संतुष्टि प्राप्त होती होगी। शिवमूर्ति की कथाओं में स्त्री के अबलापन से अधिक उस सामाजिक ताने-बाने को उभारा जाता है जो किसी भी प्रतिभावान और साहसी स्त्री को भी संकटग्रस्त बनाता है। उसका दलित और दरिद्र होना उसके सारे अपमान तथा जख्मों के बुनियादी कारण के रूप में मौजूद दिखता है।

उनकी 'अकालदंड' और 'कसाईबाड़ा' जैसी कहानी इस संदर्भ में खासतौर पर हमारा ध्यान आकृष्ट करती है।

ISSN No: 2349-2015 (Print)
Peer Reviewed & Refereed Journal
National Research Journal

दोनों ही कथाओं में स्त्री के ऊपर फेंका गया धोखे का जाल है और दोनों में ही पूरी ताकत और जिजीविषा से लड़ती स्त्रियों के दीप्तपूर्ण तेजस्वी चरित्र हैं। उनकी अन्य कहानियों जैसे 'सिरी उपमा जोग' और 'केसर कस्तूरी' के स्त्री चरित्र भी दुःख के विशाल समंदर में बड़े साहस के साथ अपनी जीवन-जौका को खेते नजर आते हैं। 'अकाल-दंड' में गाँव में राहत राशि बाँटने आए सेक्रेटरीजी हैं जो सुरजी के बलात्कार के लिए बेचैन हैं और फूट-फूटकर रोती सुरजी का चेहरा है जो सोचती है- "इस गोरी चमडी और दप-दप जलती रूपराशि का क्या करे वह। दुर्दिन की मार भी जिसका तेज मंद नहीं कर पा रही है।"[7] वही सुरजी बाद में जबर्दस्ती किए जाने पर सिकरेटरी बाबू की देह का नाजुक हिस्सा हसिए से उड़ा देती है। कहानी कुछ-कुछ पुरानी कथापरंपरा की शैली का स्मरण कराती है जिनमें शत्रु का वध बड़े रणनीतिक तरीकों से किया जाता है। लेकिन जिस मूल समस्या की ओर कहानी संकेत करती है, वह यह है कि ग्रामीण संरचना ने स्त्रियों के बाहर निकलने के रास्तों को बंद कर रखा था। लगता था कि हर तरफ 'नो एग्जिट' के बोर्ड टांग दिए गए हैं। जो लोकतंत्र आजादी के बाद गाँव में पहुँचा भी, वह उसी सामंती संरचना में घुलमिल गया। लोकतंत्र, पुलिस थाना, एफआइआर, आईपीसी, राहत और विकास योजनाएँ लगभग सभी ने सामंती ढांचे के साथ मैत्रीपूर्ण संबंध कायम किए और इस कारण से जो लोग सामंतवाद से पीड़ित थे वे किसी भी विकास प्रक्रिया से बाहर रहने के लिए मजबूर हो गए। कसाईबाड़ा कहानी में तो गाँव जैसे किसी खौफनाक 'हारर फिल्म' के दृश्यों में तब्दील हो गए हैं और एक के बाद एक रोंगटे खड़े करने वाले दृश्य सामने आ रहे हैं। शनिचरी ऐसी विधवा है जो अपनी लड़की को विवाह के धोखे में बेचे जाने का विरोध कर रही है और अध रंगी जैसा पागल है जो पूरे गाँव में घूम-घूमकर परधान, लीडर और दरोगा के खिलाफ चिल्लाता है पर कोई उसकी नहीं सुनता। अनशन करते-करते शनिचरी मारी जाति है।

उसकी दो बीघा जमीन भी धोखे से लिखवा ली जाती है। ईश्वर और अध्यात्म पर विश्वास भी गाँवों में खूब मिलता है और मान्यता भी है कि अन्याय का अंत करना ईश्वर का काम है। पर समाज का सत्तावर्ग, जो स्वयं इन विश्वासों का पोषण करता है, वहीं इन विश्वासों से मोहभंग होने की स्थितियाँ भी पैदा कर देता है। अध रंगी जब शनिचरी की लाश को उसकी झोपड़ी में जलाता है तो जैसे इसी मान्यता पर वह क्रोधित होने लगता है। कहानी में इसका दारुण रूप इस तरह आया है- "चिता की परिक्रमा करते-करते सहसा वह बैठ जाता है और झुककर धरती को घूरने लगता है। शनिचरी कहती थी अन्याय की हद होती है तो धरती फट जाती है, लेकिन..."[8] इस एक 'लेकिन'

ISSN No: 2349-2015 (Print)
Peer Reviewed & Refereed Journal
National Research Journal

शब्द में ही जैसे पूरी भीतरी विक्षोभ तथा हताशा का पूरा प्रतिबिंब मौजूद है। इस बात की झलक है कि अंततः ईश्वर भी मनुष्य को धोखा दे जाता है जिसे सबसे अधिक उसकी जरूरत होती है। शिवमूर्ति अपने कथा विन्यास में यथार्थवाद की शैली का बखूबी प्रयोग करते हैं और इसके लिए लोकजीवन के दृश्यों का प्रामाणिक चित्रण करते हैं। यानी यथार्थवाद केवल उनकी कथा वस्तु में नहीं बल्कि पूरे कथा-विन्यास में उपस्थित रहता है।

एक समय ऐसा अवश्य था कि कथाकारों को लगने लगा था कि अब समाज के असली शत्रु का चेहरा पहचानना कठिन हो गया है और इसीलिए किसके विरुद्ध कैसे लड़ा जाए, यह तय कर पाना भी मुश्किल हो गया है। जैसे पहले राजा के खिलाफ लड़ा जा सकता था, या बाद में अंग्रेजों के खिलाफ। यानी शत्रु के निर्वैयक्तिकरण ने उसके विरुद्ध संघर्ष को लगभग नामुमकिन बना दिया है। चेहराहीन शत्रु से लड़ाई ने संघर्ष के पूरे इतिहास को ही गड्डमगड्डु सा कर दिया है। यह निराशासूचक वाक्य अज्ञेय जैसे एक समय क्रांतिकारी जीवन जीने वाले लेखकों के मुँह से ही निकला था- 'अन्यायकारी सत्ता का अब कोई चेहरा ही नहीं रह गया।' पर हम जिस अन्यायकारी सत्ता के निर्वैयक्तीकरण को लेकर अफसोस जता रहे थे, यह मात्र रोमांटिक मुद्रा भर थी। इस रोमांटिसिज्म के प्रवाह में कई लोग गाँव-शहर के यथार्थ से जुड़ने, उनकी विकृति के बारे में चेतना विकसित करने और उसमें मौजूद अन्याय पर रोष प्रकट करने के स्थान पर सीधे किसी शत्रु के खिलाफ मर्मोचे पर उत्तर जाना चाहते थे। वे प्राचीन वीर-काव्यों की तरह किसी युद्ध-स्थल में जाने की इच्छा प्रकट करते थे पर जब ऐसे स्थल उन्हें आसपास नहीं दिखते थे तो शत्रु के निर्वैयक्तिकरण के फलसफे गढ़ लेते थे। वे स्वीकृत मूल्यों की प्रतिष्ठा के लिए स्वयं को तब भी यत्नशील नहीं मानते थे पर मूल्यों के संकट के प्रश्न को ठीक जनसंघर्षो के नजरिए से देखने का विरोध करते थे। हिंदी में रामचंद्र शुक्ल ने इसी उदासीनता की प्रवृत्ति को रचना विरोधी तथा मनुष्यता विरोधी बताते हुए लिखा था-"जाने दो, हमसे क्या मतलब, चलो अपना काम देखें। यह महाभयानक रोग है।

कहानीकार ने गाँव में 'दाग देने' की प्रथा की सहजभाव से झलक दिखा दी। इच्छानुसार कार्य न होने पर प्रताड़ना के साथ दण्ड देने का रिवाज रहा है। दागने का कार्य अपने अधिकार का उप्पा लगाने के रूप में अर्थात् अधिकार का प्रदर्शन करने के लिए भी किया जाता है, विशेष रूप से पशुओं पर अपने अधिकार की मुहर लगाने के लिए। लोहे की आकृतियों को भट्टे में सुर्ख लाल तपा कर अपने अधिकार के पशुओं की देह पर दाग कर अपने अधिकार की छाप अंकित कर दी

ISSN No: 2349-2015 (Print)
Peer Reviewed & Refereed Journal
National Research Journal

जाती है। इसी तरह सकुंचित विचार रखने वाले पुरुषों के लिए भी स्त्री का अस्तित्व किसी गाय-गोरु की भांति ही होता है। स्त्री घर की चौखट के भीतर रहे या चौखट के बाहर जाए, उस पर उसके 'मालिक' पुरुष का ठप्पा लगा होना चाहिए। 'तिरिया चरित्तर' के कथानक से ही स्पष्ट है कि कहानीकार शिवमूर्ति ने इस तथ्य को बहुत करीब से अनुभव किया है कि ग्रामीण अंचल में प्रत्येक स्त्री को किसी न किसी रूप में पुरुषों की 'सरपंची' झेलनी पड़ती है। जो स्त्री दबाव में आने से इनकार करती है उसे 'दागा' जा सकता है।

विमली 'तिरिया जनम' का दण्ड हो तो भुगतने अपने ससुराल जा रही थी। ससुर विसराम उसे अपने गाँव, अपने घर ले आया। विसराम के बेटे का पता नहीं किन्तु विसराम को इससे क्या? वह स्वयं प्रस्तुत है अपनी बहू के साथ अपनी देह की आग बुझाने के लिए। विमली ने सपने में यह नहीं सोचा था। वह अपने पिता के घर लौटने को उद्यत हो उठती है। वह अपने पति का पता भी ढूंढ निकालती है और उसके नाम चिट्ठी भेजती है किन्तु पिता के आने से पहले धर्म के नाम पर छल-कपट का सहारा लेकर ससुर अपने कुत्सित प्रयास में सफल हो जाता है। पिता को पता चलता है तो वह विमली को साथ लिए बिना ही अकेले लौट जाता है।

पिता कलंकित बेटी को अपने साथ कैसे ले जाता? उसे भी तो विश्वास था कि उसकी बेटी ईंट भट्ठा जाने के नाम पर आवारगी करती है। पिता के भीतर बैठा पुरुष बेटी द्वारा कमर तोड़ मेहनत कर के कमाई जा रही दो समय की रोटी के साथ उसकी निर्मलता को नहीं ऑक पाता है। ऐसा पिता 'अपने यार' के साथ भागती हुई 'पकड़ी गई' बेटी को अपने साथ, अपने गाँव, अपने घर कैसे ले जाता? हाँ, यदि बेटा होता और उसने किसी लड़की के साथ कुकर्म किया होता तो उस बेटे को अपनी छाया में छुपा कर अपने साथ सुरक्षित ले जाता। विमली बेटा नहीं बेटी थी। उसे छोड़ दिया गया उसकी नियति के साथ।

ससुर ने कहा कि इमली अपने यार के साथ भाग गई है उसे पकड़ो और गाँव के युवा बूढ़े सब निकल पड़े उसे पकड़ने। युवाओं ने विमली का पकड़ कर वापस लाने में अपनी विजय समझी। किसी ने सच जानने का प्रयास नहीं किया। स्त्री का सच तो सच होता ही नहीं है. यह धारणा पंचायत के पंच सरपंच पुरुषों के मन में इस तरह जड़ें जमाए रहती है कि वे स्त्री को ही दण्ड का भागी बनाते हैं फिर चाहे स्त्री निरपराध ही क्यों न हो।

ISSN No: 2349-2015 (Print)
Peer Reviewed & Refereed Journal
National Research Journal

यही हुआ विमली के साथ। ससुर ने छल-कपट को बहू का ही छल-कपट अर्थात् तिरिया चरित्तर माना। उसे दागे जाने का दण्ड दिया गया। ताकि अंतिम साँस तक वह 'बदचलन' के ठप्पे के साथ लॉक्षित जीवन जीती रहे। ऐसा नहीं था कि विमली ने विरोध नहीं किया या सच बताने का प्रयास नहीं किया किन्तु नक्कारखाने में तूती? यही तो है हमारे ग्रामीण क्षेत्रों का सच। मात्र ग्रामीण ही नहीं, वरन शहरी और सुशिक्षित तबके में भी किसी न किसी रूप में यह सब देखने को मिलता रहता है।

शिवमूर्ति अपनी कथा पात्र विमली के प्रति कहीं न कहीं एक ऐसा जुड़ाव पाते हैं कि वे उससे संवाद करने लगते हैं। 'तिरिया चरित्तर की नायिका के नाम पत्र' में वे विमली को स्नेह से 'बिमला' कह कर संबोधित करते हैं:

'प्रिय बिमला, "तुम कभी नहीं जान सकोगी कि तुम्हारे ददों की अभिव्यक्ति के लिए मैंने कहानी लिखी थी तिरिया चरित्तर। उस कहानी पर बहुत विवाद हुआ था। कुछ ने इसे अश्लील, कुछ ने सत्य कथा, कुछ ने सफल तो कुछ ने असफल कहा था। उस समय अधिकाँश पाठक पूछते थे कि कहाँ से मिली इस कहानी को लिखने की प्रेरणा? क्या यह सत्य घटना पर आधारित है? विमली को न्याय क्यों नहीं मिला? आदि। क्या उत्तर देता ऐसे प्रश्नों का? उत्तर देना क्या इतना आसान होता है?"[9]

इसी लम्बे पत्र में वे कथा से परे कथा के परिणाम के संबंध में टिप्पणी करते हुए विमली को लिखते हैं :

"यह पता लगाने के लिए कि वास्तव में तुम्हारे पेट में किसका बच्चा है, पंचों ने (जिनमें साठ साल के बूढे ही ज्यादा थे) तुम्हारे ऊपर तीर की तरह चुभने वाले बेपर्द कर देने वाले प्रश्नों को झड़ी लगा दी थी-पहले क्या हुआ? फिर क्या हुआ? तूने क्या किया? उसने क्या किया? पंचों के बीच फूला पेट लिए सिर झुकाए हाथ जोड़े तुम खड़ी थी। कुछ देर तक न बरछे जैसे प्रश्नों का उत्तर धीरज रख कर देती रही, फिर जब आँचल से मुँह ढौंपकर कलपना शुरु किया तो लगा कि कलपन से आज धरती फट जायेगी लेकिन ऐसा कुछ नहीं हुआ। तुम्हारे मूक हो जाने पर अधेड़ बाप को खड़ा किया गया। उसके सिर पर एक जोड़ी फटी पनही रखी गई और जलील किया जाने लगा। एक हाथ से सिर पर रखी पनही के जोड़े को पकड़े और दूसरे को माथे से लगाये सिर झुका झुका कर बार-बार दोहाई दया माफी मांगी।

ISSN No: 2349-2015 (Print)
Peer Reviewed & Refereed Journal
National Research Journal

निष्कर्ष :–

शिवमूर्ति की कहानियाँ गाँव को फ्रीज किए गए स्थिर रूपों में नहीं बल्कि उनके गतिशील रूप को देखने में भरोसा करती हैं। यहाँ गाँव केवल सपेरों के तमाशों. हाट-बाजार, झूलों से भरे बाग-बगीचे या हरी-भरी खेतिहर भूमि भर नहीं हैं बल्कि मानवीय पीड़ा तथा जीवन संघर्ष के रूपक की तरह अधिक सामने आते हैं। लोकहृदय में लीन होने को रसदशा भी कहा गया है और रसदशा उनकी कहानियों में भी निष्पन्न होती है। चित्रित गाँवों में लैंगिक तथा जातीय संबंधों के स्तर पर सशक्त प्रतिरोध या किसी निर्णायक बदलाव की बहुत स्पष्ट आहटें नहीं सुनाई पड़ती हैं पर लोगों के व्यक्तिगत जीवन में मौजूद असंतोष और क्षोभ के स्वर साफ सुनाई देते हैं। यानी उनका गाँव किसी सामूहिक क्राति के रास्ते पर नहीं चलता दिखता पर उनमें चित्रित मानव चरित्र जिस प्रकार अन्याय को लेकर सहनशीलता खो रहे हैं, उससे लगता है कि इन गाँवों में सामाजिक रुपांतरण का ऐतिहासिक चरण कहीं सत्रिकट ही हैं

संदर्भ सूची :-

1. लंमही, अक्टूबर-दिसंबर 2012 पृष्ठ 205
2. वही, पृष्ठ 159
3. मंच, जनवरी-मार्च 2001 पृष्ठ 5
4. केशर कस्तूरी, शिवमूर्ति, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, 1995 पृष्ठ 45
5. वही, पृष्ठ 27
6. वही पृष्ठ 54
7. लमही, अक्टूबर-दिसम्बर 2012 पृष्ठ 170
8. वही, पृष्ठ 187
9. केशर कस्तूरी, शिवमूर्ति, पृष्ठ, 99